इन्द्रिय विचार

इन्द्रियनिरूपण प्रसङ्गमें मुख्यतया नीचे लिखी बातोंपर दर्शनशास्त्रोंमें विचार पाया जाता है—

इन्द्रिय पदकी निरुक्ति, इन्द्रियोंका कारण, उनकी संख्या, उनके विषय, उनके आकार, उनका पारस्परिक भेदाभेद, उनके प्रकार तथा द्रव्य-गुणग्राहित्व-विवेक इत्यादि।

अभीतक जो कुछ देखनेमें आया उससे ज्ञात होता है कि इन्द्रियपदकी निरुक्ति जो सबसे पुरानी लिपिबद्ध है वह पाणिनिके सूत्र[1]में ही है। यद्यपि इस निरुक्तिवाले पाणिनीय सूत्रके ऊपर कोई भाष्यांश पतञ्जलिके उपलब्ध महाभाष्य-में दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि सम्भव है पाणिनीय सूत्रोंकी अन्य कोई प्राचीन व्याख्या या व्याख्याओंमें उस सूत्रपर कुछ व्याख्या लिखी गई हो। जो कुछ हो पर यह स्पष्ट जान पड़ता है कि प्राचीन बौद्ध और जैन दार्शनिक ग्रन्थोंमें पाई जानेवाली पाणिनीय सूत्रोक्त इन्द्रियपदकी निरुक्ति किसी न किसी प्रकारसे पाणिनीय व्याकरणकी परम्पराके अभ्यासमेंसे ही उक्त बौद्ध-जैन ग्रन्थोंमें दाखिल हुई है। विशुद्धिमार्ग[2] जैसे प्रतिष्ठित बौद्ध और तत्त्वार्थ-

---

१. 'इन्द्रियमिन्द्रलिंगमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमितिवा।'–५.२.९३।

२. 'को पन नेसं इन्द्रियट्ठो नामाति ? इन्दलिंगट्ठो इन्द्रियट्ठो; इन्ददेसितट्ठो इन्द्रियट्ठो; इन्ददिट्ठट्ठो इन्द्रियट्ठो; इन्दसिट्ठट्ठो इन्द्रियट्ठो; इन्दजुट्ठट्ठो इन्द्रियट्ठो; सो सब्बोपि इध यथायोगं युज्जति। भगवा हि सम्मासम्बुद्धो परमिस्सरियभावतो इन्दो, कुसलाकुसलं च कम्मं कम्मेसु कस्सचि इस्सरियाभावतो। तेनेवेत्थ कम्मसञ्जनितानि ताव इन्द्रियानि कुसलाकुसलकम्मं उल्लिंगेन्ति। तेन च सिट्ठानीति इन्दलिङ्गट्ठेन इन्दसिट्ठट्ठेन च इन्द्रियानि। सब्बानेव पनेतानि भगवता यथा भूततो पकासितानि अभिसम्बुद्धानि चाति इन्ददेसितट्ठेन इन्ददिट्ठट्ठेन च इन्द्रियानि। तेनेव भगवता मुनीन्देन कानिचि गोचरासेवनाय, कानिचि भावनासेवनाय सेवितानीति इन्दजुट्ठट्ठेनापि इन्द्रियानि। अपि च आधिपच्च-संखातेन इस्सरियट्ठेनापि एतानि इन्द्रियानि। चक्खुविञ्ञाणादिप्पवत्तियं हि चक्खादीनं सिद्धं आधिपच्चं, तस्मिं तिक्खे तिक्खत्ता, मन्दे मन्दत्ता ति। अयं तावेत्थ अत्थतो विनिच्छयो।'–विसुद्धि० पृ० ४९१।

भाष्य[1] जैसे प्रतिष्ठित जैन दार्शनिक ग्रन्थमें एक बार स्थान प्राप्त कर लेनेपर तो फिर वह निरुक्ति उत्तरवर्ती सभी बौद्ध-जैन महत्त्वपूर्ण दर्शन ग्रन्थोंका विषय बन गई है।

इस इन्द्रिय पदकी निरुक्तिके इतिहासमें मुख्यतया दो बातें खास ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि बौद्ध वैयाकरण जो स्वतन्त्र हैं और जो पाणिनीय के व्याख्याकार हैं उन्होंने उस निरुक्तिको अपने-अपने ग्रन्थोंमें कुछ विस्तारसे स्थान दिया है और आ० हेमचन्द्र[2] जैसे स्वतन्त्र जैन वैयाकरणने भी अपने व्याकरणसूत्र तथा वृत्तिमें पूरे विस्तारसे उसे स्थान दिया है। दूसरी बात यह कि पाणिनीय सूत्रोंके बहुत ही अर्वाचीन व्याख्या-ग्रन्थोंके अलावा और किसी वैदिक दर्शनके ग्रन्थमें वह इन्द्रियपदकी निरुक्ति पाई नहीं जाती जैसी कि बौद्ध-जैन दर्शन ग्रन्थोंमें पाई जाती है। जान पड़ता है, जैसा अनेक स्थलोंमें हुआ है वैसे ही, इस संबन्धमें असलमें शाब्दिकोंकी शब्दनिरुक्ति बौद्ध-जैन दर्शन ग्रन्थोंमें स्थान पाकर फिर वह दार्शनिकोंकी चिन्ताका विषय भी बन गई है।

माठरवृत्ति[3] जैसे प्राचीन वैदिक दर्शनग्रन्थमें इन्द्रिय पदकी निरुक्ति है पर वह पाणिनीय सूत्र और बौद्ध-जैन दर्शनग्रन्थोंमें लभ्य निरुक्तिसे बिलकुल भिन्न और विलक्षण है।

जान पड़ता है पुराने समयमें शब्दोंकी व्युत्पत्ति या निरुक्ति बतलाना यह एक ऐसा आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था कि जिसकी उपेक्षा कोई बुद्धिमान् लेखक नहीं करता था। व्युत्पत्ति और निरुक्ति बतलानेमें ग्रन्थकार अपनी स्वतन्त्र कल्पनाका भी पूरा उपयोग करते थे। यह वस्तुस्थिति केवल प्राकृत-पालि शब्दोंतक ही परिमित न थी वह संस्कृत शब्दोंमें भी थी। इन्द्रियपदकी निरुक्ति इसीका एक उदाहरण है।

मनोरञ्जक बात तो यह है कि शाब्दिक क्षेत्रसे चलकर इन्द्रियपदकी निरुक्ति ने दार्शनिक क्षेत्रमें जब प्रवेश किया तभी उसपर दार्शनिक सम्प्रदायकी छाप लग गई। बुद्धघोष[4] इन्द्रियपदकी निरुक्तिमें और सब अर्थ पाणिनिकथित बत-

---

१. 'तत्त्वार्थभा० २. १५। सर्वार्थ १. १४।

२. 'इन्द्रियम्।'–हैमश० ७. १. १७४।

३. 'इन् इति विषयाणां नाम, तानिनः विषयान् प्रति द्रवन्तीति इन्द्रियाणि।'–माठर० का० २६।

४. देखो पृ० १३४. टिप्पणी २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाते हैं पर इन्द्रका अर्थ सुगत बतलाकर भी उस निरुक्तिको सङ्गत करनेका प्रयत्न करते हैं। जैन आचार्योंने इन्द्रपदका अर्थ मात्र जीव या आत्मा ही सामान्य रूपसे बतलाया है। उन्होंने बुद्धघोषकी तरह उस पदका स्वाभिप्रेत तीर्थङ्कर अर्थ नहीं किया है। न्याय-वैशेषिक जैसे ईश्वरकर्तृत्ववादी किसी वैदिक दर्शनके विद्वान्ने अपने ग्रन्थमें इस निरुक्तिको स्थान दिया होता तो शायद वह इन्द्रपदका ईश्वर अर्थ करके भी निरुक्ति सङ्गत करता।

सांख्यमतके अनुसार इन्द्रियोंका उपादानकारण अभिमान है जो प्रकृतिजन्य एक प्रकारका सूक्ष्म द्रव्य ही है—सांख्यका० २५। यही मत वेदान्तको मान्य है। न्याय वैशेषिक मतके अनुसार (न्यायसू० १. १. १२) इन्द्रियोंका कारण पृथ्वी आदि भूतपञ्चक है जो जड़ द्रव्य ही है। यह मत पूर्वमीमांसकको भी अभीष्ट है। बौद्धमतके अनुसार प्रसिद्ध पाँच इन्द्रियाँ रूपजन्य होनेसे रूप ही हैं जो जड़ द्रव्यविशेष है। जैन दर्शन भी द्रव्य—स्थूल इन्द्रियोंके कारणरूपसे पुद्गलविशेषका ही निर्देश करता है जो जड़ द्रव्यविशेष ही है।

कर्णशष्कुली, अक्षिगोलककृष्णसार, त्रिपुटिका, जिह्वा और चर्मरूप जिन बाह्य आकारोंको साधारण लोग अनुक्रमसे कर्ण, नेत्र, घ्राण, रसन और त्वक् इन्द्रिय कहते हैं वे बाह्याकार सर्व दर्शनोंमें इन्द्रियाधिष्ठान[1] ही माने गए हैं—इंद्रियाँ नहीं। इंद्रियाँ तो उन आकारोंमें स्थित अतींद्रिय वस्तुरूपसे मानी गई हैं, चाहे वे भौतिक हों या आहङ्कारिक। जैन दर्शन उन पौद्गलिक अधिष्ठानोंको द्रव्येन्द्रिय कहकर भी वही भाव सूचित करता है कि—अधिष्ठान वस्तुतः इंद्रियाँ नहीं हैं। जैन दर्शनके अनुसार भी इंद्रियाँ अतींद्रिय हैं पर वे भौतिक या आभिमानिक जड़ द्रव्य न होकर चेतनशक्तिविशेषरूप हैं जिन्हें जैन दर्शन भावेंद्रिय—मुख्य इंद्रिय—कहता है। मन नामक षष्ठ इन्द्रिय सब दर्शनों में अंतरिन्द्रिय या अंतःकरण रूपसे मानी गई है। इस तरह छः बुद्धि इन्द्रियाँ तो सर्व-दर्शन साधारण हैं पर सिर्फ सांख्यदर्शन ऐसा है जो वाक्, पाणि, पादादि पाँच कर्मेन्द्रियोंको भी इन्द्रियरूपसे गिनकर उनकी ग्यारह संख्या (सांख्यका० २४) बतलाता है। जैसे वाचस्पति मिश्र और जयन्तने सांख्य-परिगणित कर्मेन्द्रियोंको इन्द्रिय माननेके विरुद्ध कहा[2] है वैसे ही आ० हेमचंद्रने

---

१. न्यायम० पृ० ४७७।

२. तात्पर्य० पृ० ५३१। न्यायम० पृ० ४८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कर्मेंद्रियोंके इन्द्रियत्वका निरास करके अपने पूर्ववर्ती[1] पूज्यपादादि जैनाचार्योंका ही अनुसरण किया है।

यहाँ एक प्रश्न होता है कि पूज्यपादादि प्राचीन जैनाचार्य तथा वाचस्पति, जयन्त आदि अन्य विद्वानोंने जब इन्द्रियोंकी सांख्यसम्मत ग्यारह संख्याका बलपूर्वक खण्डन किया है तब उन्होंने या और किसीने बौद्ध अभिधर्ममें[2] प्रसिद्ध इन्द्रियोंकी बाईस संख्याका प्रतिषेध या उल्लेख तक क्यों नहीं किया ?। यह माननेका कोई कारण नहीं है कि उन्होंने किसी संस्कृत अभिधर्म ग्रन्थको भी न देखा हो। जान पड़ता है बौद्ध अभिधर्मपरम्परामें प्रत्येक मानसशक्तिका इन्द्रियपदसे निर्देश करनेकी साधारण प्रथा है ऐसा विचार करके ही उन्होंने उस परम्पराका उल्लेख या खण्डन नहीं किया है।

छः इन्द्रियोंके शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श आदि प्रतिनियत विषय ग्राह्य हैं। इसमें तो सभी दर्शन एकमत हैं पर न्याय-वैशेषिकका इन्द्रियोंके द्रव्यग्राहकत्वके संबन्धमें अन्य सबके साथ मतभेद है। इतर सभी दर्शन इन्द्रियोंको गुणग्राहक मानते हुए भी गुण-द्रव्यका अभेद होनेके कारण छहों इन्द्रियोंको द्रव्यग्राहक भी मानते हैं जब कि न्याय-वैशेषिक और पूर्वमीमांसक वैसा नहीं मानते। वे सिर्फ नेत्र, स्पर्शन और मनको द्रव्यग्राहक कहते हैं अन्यको नहीं (मुक्ता० का० ५३-५६)। इसी मतभेदको आ० हेमचन्द्रने स्पर्श आदि शब्दोंकी कर्म-भावप्रधान व्युत्पत्ति बतलाकर व्यक्त किया है और साथ ही अपने पूर्वगामी जैनाचार्योंका पदानुगमन भी।

इन्द्रिय-एकत्व और नानात्ववादकी चर्चा दर्शनपरम्पराओंमें बहुत पुरानी है—न्यायसू० ३. १. ५२। कोई इन्द्रियको एक ही मानकर नाना स्थानोंके द्वारा उसके नाना कार्योंका समर्थन करता है, जब कि सभी इन्द्रियनानात्ववादी उस मतका खण्डन करके सिर्फ नानात्ववादका ही समर्थन करते हैं। आ० हेमचन्द्रने इस संबन्धमें जैन प्रक्रिया-सुलभ अनेकान्त दृष्टिका आश्रय लेकर

---

१. तत्त्वार्थभा० २. १५। सर्वार्थ० २. १५।

२. 'कतमानि द्वाविंशतिः। चक्षुरिन्द्रियं श्रोत्रेन्द्रियं घ्राणेन्द्रियं जिह्वेन्द्रियं कायेन्द्रियं मनइन्द्रियं स्त्रीन्द्रियं पुरुषेन्द्रियं जीवितेन्द्रियं सुखेन्द्रियं दुःखेन्द्रियं सौमनस्येन्द्रियं दौर्मनस्येन्द्रियं उपेक्षेन्द्रियं श्रद्धेन्द्रियं वीर्येन्द्रियं समाधीन्द्रियं प्रज्ञेन्द्रियं अनाज्ञातमाज्ञास्यामीन्द्रियं आज्ञेन्द्रियं आज्ञातावीन्द्रियम्।'—स्फुटा० पृ० ६५। विसुद्धि० पृ० ४६१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियोंमें पारस्परिक एकत्व-नानात्व उभयवादका समन्वय करके प्राचीन जैनाचार्योंका ही अनुसरण किया है और प्रत्येक एकान्तवादमें परस्पर दिये गए दूषणोंका परिहार भी किया है।

इन्द्रियोंके स्वामित्वकी चिन्ता भी दर्शनोंका एक खास विषय है। पर इस संबन्धमें जितनी अधिक और विस्तृत चर्चा जैनदर्शनोंमें पाई जाती है वैसी अन्य दर्शनोंमें कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। वह बौद्ध दर्शनमें है पर जैनदर्शनके मुकाबिलेमें अल्पमात्रा है। स्वामित्वकी इस चर्चाको आ० हेमचन्द्रने एकादश-अङ्गावलम्बी तत्त्वार्थसूत्र और भाष्यमेंसे अक्षरशः लेकर इस संबन्धमें सारा जैनमन्तव्य प्रदर्शित किया है।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org